ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.4, Oct. –Dec., 2025/4

# देवगढ़ का दशावतार मन्दिर

**शिखा पाठक एवं ऋचा पाठक**

**https://doi.org/ 10.61410/had.v20i4.253**

**सारांश**– प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला की धरोहर में गुप्त साम्राज्य एक महत्वपूर्ण काल का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे 'स्वर्ण युग' के नाम से भी जाना जाता है। प्रारम्भ में मन्दिरों का निर्माण काष्ठ जैसी नाशवान सामग्री से होता था, परन्तु गुप्तकाल में मन्दिरों का निर्माण पाषाण से किया जाने लगा, इसलिए यदि कहा जाय कि मंन्दिर निर्माण कला का वास्तविक जन्म गुप्तकाल में हुआ, तो अतिश्योक्ति नहीं होगा। 'मन्दिर' शब्द संस्कृत भाषा के इतिहास में अधिक प्राचीन नहीं है। सर्वप्रथम इसका उल्लेख ''शतपथ ब्राह्मण'' में मिलता है। धार्मिक ग्रन्थों जैसे–महाकाव्य, सूत्रग्रन्थों में मन्दिर की अपेक्षा देवस्थान, देवगृह, देवकुल, देवायतन आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो देवता के निवास स्थान का बोध कराते हैं। इस काल में अनेक मन्दिरों का निर्माण विभिन्न शैलियों में हुआ। यदि कला के क्षेत्र का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाय, तो यह परिलक्षित होता है कि, हड़प्पा सभ्यता से लेकर मौर्योत्तर काल तक गुप्तकालीन नवप्रवर्तन की आधारशिला निर्मित की गयी। मौर्य काल में वास्तुकला के क्षेत्र में जहाँ अनेक 'स्मारकीय पत्थर' बनाये गये, वहीं शुंग और कुषाणों ने 'गान्धार कला का विस्तार करते हुए अनेक बौद्ध स्तूपों का निर्माण कराया। गुप्त काल में मन्दिर निर्माण की नयी तकनीक ने एक विशिष्ट वास्तुकला का विकास किया, जिसमें गर्भगृह, मंडप और विशाल शिखरों वाले मन्दिरों का निर्माण किया गया। गुप्त काल में 'नागर' तथा 'पंचायतन' वास्तुकला में मथुरा कला शैली की पारदर्शिता को देखा जा सकता है। गुप्त साम्राज्य कला के साथ–साथ साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान देकर, आने वाले युग के लिए अपनी विरासत को प्रतीकात्मक रूप से स्थापित किया।

**मुख्य शब्द**ः– स्थापत्य, वास्तु, पंचायतन, नागर

**प्रस्तावना –**

प्राचीन भारत की स्थापत्य धरोहर चिरकाल तक पल्लवित और पुष्पित होती रही, जिसमें सौम्यता, शालीनता और आध्यात्मिक गहनता का प्रमाण मिलता है। भारत में स्थापत्य कला का इतिहास अत्यन्त समृद्ध रहा है, जो विभिन्न कालखण्डों में भिन्न–भिन्न शैलियों में परिलक्षित होता है, उदाहरण के रूप में सिन्धु घाटी सभ्यता की नगर परिष्कृतता, मौर्य काल के राजकीय स्मारक और गुप्त काल की कलात्मक उत्कृष्टता का समावेश है। गुप्तकाल भारतीय मन्दिर स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल का प्रतिनिधित्व करता है। इस काल के अधिकांश मन्दिर वर्तमान समय में अपनी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में विद्यमान हैं, इस अवस्था में भी मन्दिर पर उत्कीर्ण कला को देखकर इस काल की कला की श्रेष्ठता को समझा जा सकता है।

गुप्त काल के प्रारम्भिक समय में मन्दिर अत्यन्त छोटे बनाये जाते थे, जिसमें एक वर्गाकार गर्भगृह होता था, इसमें मात्र इष्ट देवता की प्रतिमा स्थापित की जाती थी। द्वार मंडप छोटा तथा छत समतल होता था, जो मन्दिर निर्माण योजना की दृष्टि से साधारण ही प्रतीत होता है, किन्तु मन्दिर के

- **शोध छात्रा,** प्राचीन इतिहास विभाग, का0सु0 साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या।
- **शोध निर्देशिका**–असिस्टेंट. प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, का0सु0 साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या।

प्रवेश तोरण को जटिल स्थापत्य कला से अलंकृत किया जाता था। गुप्त काल की उत्कीर्ण मूर्तियों में मूर्तिकारों ने अपने कौशल की उत्कृष्टता को दर्शाया है। जहाँ कुषाणकालीन मूर्तियों में शरीर सौन्दर्य के प्रदर्शन पर बल दिया, वहीं गुप्तकाल में मूर्तियों पर मोटे उत्तरीय वस्त्र को प्रदर्शित किया है[1]। गंगा यमुना की मूर्ति गुप्त काल के ही शिल्पकारों की देन है। 5वीं और 6वीं शताब्दी में मन्दिर संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, इस समय मन्दिरों का निर्माण ऊँचे जगती पर किया जाने लगा और मन्दिरों की छत समतल न बनाकर धीरे–धीरे शिखर का रूप लेने लगी थी। शिखरयुक्त मन्दिरों के उदाहरण में ''देवगढ़ के दशावतार मन्दिर'' को प्रथम स्थान प्राप्त है। इस मन्दिर का निर्माण 'पंचायतन तथा ''नागर'' शैली के सम्मिश्रण से हुआ है।

देवगढ़ का दशावतार मन्दिर गुप्तकालीन प्रमुख मन्दिर है, जिसका निर्माण 6वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में किया गया था। यह मन्दिर भारत में उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले के देवगढ़ नामक स्थान पर स्थित है, जो झाँसी से 125 किलोमीटर दूर उत्तर मध्य भारत में बेतवा नदी घाटी में है। मन्दिर भगवान विष्णु को समर्पित है, जिसमे ंभगवान विष्णु के दस अवतारों का चित्रांकन किया गया है। इस मन्दिर का निर्माण 'पंचायतन शैली, में किया गया है, जिसका सामान्य अर्थ – ''मुख्य मन्दिर के चारों कोने पर चार सहायक मन्दिर का निर्माण करना।'' केन्द्रीय मन्दिर एक मजबूत उध्वार्धर रेखा में ऊपर उठा है। मन्दिर का आधार 55.5 फीट (16.9मीटर) की वर्गाकार जगती पर बना है, जिससे लगी हुई 9 फीट (2.7 मीटर) के लगभग सोपान बने हैं। जगती 4 समान क्रम में विभाजित है, प्रत्येक सोपान की मोटाई 0.95 फीट (0.29मीटर) है[2]। चार सोपान के ऊपर, स्तम्भों द्वारा अलग किये गये आयताकार क्रम जो पूरे जगती तक फैला है। मन्दिर के निर्माण में पाषाण खण्डों को आपस मे ंगिट्टों के द्वारा परस्पर जोड़ा गया है। पंचायतन शैली में सम्मित बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें केन्द्रीय मन्दिर के सहायक मन्दिर का समान रूप व्यवस्थित किया जाता है[3]।

मन्दिर के चार प्रवेशद्वार थे, सभी द्वार के सामने छोटे–छोटे मंडप और सोपान थे। द्वारतोरण के ऊपर केन्द्रीय भाग पर भगवान विष्णु की मूर्ति उत्कीर्ण की गयी है, वे चार भुजाओं वाले वासुदेव के रूप में है जिन्हें अनेक शीश वाले शेषनाग की कुण्डली पर बैठे हुए दिखाया गया है। उनके एक हाथ में चक्र, दूसरे में शंख और तीसरा हाथ अभयमुद्रा में है तथा चौथा उनकी जाँघ पर टिका हुआ है। नीचे उनके दाहिनी ओर उनकी पत्नी लक्ष्मी बैठी हैं, जो उनके चरण दबा रही हैं। उनके बांयी ओर तथा नीचे दाहिनी ओर क्रमशः नरसिंह अवतार तथा वामन अवतार है। मन्दिर के द्वारतोरण पर बांयी ओर जल की देवी गंगा तथा दाहिनी ओर यमुना की आकृति बनायी गयी है[4]। पार्श्व स्तम्भों पर प्रतिहारी स्त्री–पुरुष की मूर्तियाँ रमणीय हैं। स्तम्भों की कुछ चित्रवल्लर वर्तमान में दिल्ली के संग्रालय में संरक्षित किये गये हैं, इन चित्रवल्लरों में कुछ आकृति जैसे–प्रथम, दम्पती, मंगलघट, श्री वृक्ष आदि हैं। यहाँ चित्रवल्लर का अर्थ–किसी स्तम्भ पर की गयी रचना के विस्तृत मध्य भाग को चित्रवल्लर कहते है।

मन्दिर का मुख पश्चिम दिशा की ओर है, जिसका झुकाव अल्परूप से दक्षिण की ओर है, जिसके कारण सूर्यास्त की किरणें मुख्य मन्दिर पर नहीं पड़ती हैं। मन्दिर की दीवारों पर अनेक आकर्षक आकृतियाँ बनायी गयी हैं, जो हमारे महाकाव्य रामायण और महाभारत के प्रसंगों को परिलक्षित करते हैं। वहीं कुछ देवी–देवताओं को जैसे– शिव, पार्वती, कार्तिकेय, ब्रह्मा, इन्द्र आदि की आकृतियों को उकेरा गया है[5]। भगवान विष्णु से सम्बन्धित किंवदंतियाँ मन्दिर के बाहरी और आन्तरिक दीवारों पर

उकेरी गयी है। इसके अतिरिक्त प्रेमालाप और अंतरंगता के विभिन्न चरणों में धर्मनिरपेक्ष दृश्य भी उत्कीर्ण किया गया है। मन्दिर की दीवार, स्तम्भ तथा द्वारतोरण सभी शिल्प—सौन्दर्य का टकसाली उदाहरण है। दीवारों पर भगवान विष्णु को अनेक मुद्राओं में दर्शाया गया है इनमें से प्रमुख मुद्राएं इस प्रकार है :—

1. अनंतशायी विष्णु —

मन्दिर के पूर्व दिशा भित्ति पर एक मूर्ति बनायी गयी है, जिसमें भगवान विष्णु शेषनाग की शैय्या पर लेटे हुए हैं और भगवान की नाभि से ब्रह्मा जी का जन्म हो रहा है, यह दर्शाया गया है।

2. गजेन्द्रमोक्ष —

मन्दिर के उत्तर दिशा की भित्ति पर एक मूर्ति बनायी गयी है, जिसमें भगवान विष्णु गरुड़ पर सवार होकर गजेन्द्र को ग्राह से बचा रहे हैं।

3. नर—नारायण —

मन्दिर के दक्षिण दिशा में भित्ति पर नर—नारायण के रूप में भगवान विष्णु की आकृति उत्कीर्ण की गयी है, जो तपस्या कर रहे हैं। उनकी भीखी पलकों वाली आँखों की सहज प्रस्तुति दोनों आकृतियाँ को शान्ति का अनुभव प्रदान करती है। इनके अंगों की वक्रता शारीरिक रूप से त्रुटिपूर्ण है, उदाहरण के लिए दॉयी ओर की आकृति अपने पैर से तलवे को दर्शक के सामने एक ऐसी विकृति रूप में प्रस्तुत करती है, जिसे मानव शरीर उत्पन्न करने में असमर्थ है।

4. वासुदेव —

पश्चिमी कपाट पर भगवान विष्णु की मूर्ति, जिसमें भगवान को वासुदेव के रूप में शेषनाग की कुण्डली पर बैठे हुए दिखाया गया है, जो हाथों में चक्र व शंख लिये हुये हैं[6]।

मन्दिर का शिखर अधिक ऊँचा नहीं अपितु क्रमिक धुमावदार या वक्राकार बनाया गया है। वर्तमान में शिखर का ऊपरी भाग खण्डित हो गया है, निचला भाग शेष है। शिखर के चारों तरफ प्रदक्षिणापथ बनाये गये थे इनके किनारे चैत्य झरोखा निर्मित किया गया था, जिनका आकार समान नहीं था। शिखर आमलकों से अलंकृत था, क्योंकि अवशेषों से कई आमलक प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक सोपान की पंक्ति के समीप एक ताखेनुमा संरचना थी। सहायक मन्दिर की जगती, केन्द्रीय मन्दिर की जगती से नीचे थी। एक सहायक मन्दिर पर पुष्पावली तथा अधोशीर्ष स्तूप का अलंकरण है।

द्वारमंडप जो दो विशाल स्तम्भों पर आधारित था, जिनके दण्ड पर अर्थ तथा तीन चौथाई भाग में अलंकृत गोल पट्टक बने है[7]। मन्दिर के चैत्य वातायनों के घेरे में विभिन्न प्रकार के चित्र उत्कीर्ण हैं। प्रवेश चौखट पर अनेक आकृतियाँ जैसे—मिथुन, पक्षी, पुष्पीय दृश्य वाले कुण्डयुक्त सज्जा पट्टियाँ तथा बौने लोगों की प्रतिमाएँ प्रतीक के रूप में उत्कीर्ण हैं, इसके साथ ही सभी आकृतियों में प्राकृतिक और आध्यात्मिकता को प्रदर्शित किया गया है। मन्दिर का प्रत्येक भाग शुभ प्रतिमाओं जैसे—स्वस्तिक चिन्ह मूर्ति के रूप में बनाया गया है[8]। स्वस्तिक के बारे में धार्मिक ग्रन्थों में कहा गया है कि — जीवन के स्वस्ति भाव का द्योतक स्वास्तिक चिन्ह है।

मन्दिर की दीवारों पर पुष्प तथा पुष्पलताओं और पारम्परिक वास्तुशिल्प तत्वों से सुशोभित है। गर्भगृह के चारों दिशाओं की संरचना वर्तमान में क्षतिग्रस्त है। पश्चिमी ताखे में मयूर पर विराजमान भगवान कार्तिकेय की मूर्ति जर्जर अवस्था में विद्यमान है। इस मन्दिर में प्रकृति को भी वहीं स्थान प्राप्त है, जो मानव आकृति को प्राप्त है। प्रकृति से विरहित होकर प्राचीन भारतीय कला मानों जीवन के लिए छटपटाने लगती है। मनुष्य के आवाहन से जब कला नगरों में प्रवेश करती है, तब भी वह अपनी प्राण रक्षा के लिए प्रकृति को साथ लेकर आती है। चतुर शिल्पी जिस पाषाण–खण्ड को अपने कौशल से स्पर्श कर देता है, वही सौन्दर्य का प्रतीक बन जाता है और उसी से रस का अक्षय सोता फूट निकलता है।[9]

मन्दिर की मानव आकृतियों में सौम्यता को प्रदर्शित किया गया है, जो उनके सौन्दर्य और शालीनता पर बल देता है। आकृतियों के मुखमण्डल पर शान्त और दिव्य अभिव्यक्तियों का प्रदर्शन किया गया है, जो कला में शान्ति और आध्यात्मिकता के भाव को दर्शाती है। गुप्त काल की कला में सुन्दरता, यथार्थवाद और आध्यात्मिकता के सामंजस्य पर बल दिया गया है, जिसके कारण मानव आकृतियों में आदर्शवाद परिलक्षित होता है। धार्मिक भावनाओं को चरितार्थ करने के लिए और आत्मीय शान्ति का साक्षात रूप खण्ड करने के लिए भी ये मूर्तियों समर्थ और पर्याप्त प्रतीक है।[10]

हिन्दू धर्मग्रन्थ ''विष्णुधर्मोत्तरपुराण'' में इस मन्दिर का उल्लेख मिलता है, जिसमें कहा गया है कि इस मन्दिर के निर्माण मे ंविशेष शैली जिसे ''सर्वतोभद्र शैली'' कहा जाता है, में हुआ है। यहाँ 'सर्वतो' का अर्थ–सभी ओर, और 'भद्र' –शुभ की ओर इंगित करता है[11]। यह मन्दिर वर्तमान में क्षतिग्रस्त अवस्था में विद्यमान है, परन्तु इसे देखकर इसकी वास्तुकला और अभिकल्पना को सरलता से समझा जा सकता है। इस मन्दिर को गुप्त–शिल्प का तीर्थ कहना त्रुटिपूर्ण नहीं होगा।

**निष्कर्ष –**

गुप्तकालीन मन्दिरों में वास्तुकला की विविधता और रचनात्मकता का प्रयोग देखने को मिलता है। इस काल के स्थापत्य और कला में मूर्तिकला की लोकप्रियता और धर्मों का व्यापक संस्थानीकरण प्रतिबिम्बित होता है। गुप्तकाल की मूर्तिकला और वास्तुकला ने अपने अनूठेपन के लिये ही नहीं वरन सौन्दर्यता और धर्मपरायणता की अमिट छाप इतिहास के पन्नों पर छोड़ा है। इस काल में संस्कृत साहित्य ने भी सर्वोच्च मानदण्ड स्थापित किया। संस्कृत साहित्य में गद्य विधा में लेखन की लोकप्रियता बढ़ी। इस अवधि में जो शाही प्रशस्तियाँ, राजकीय अभिलेख लिखे गये, उनकी भाषा प्राकृत के स्थान पर पूर्ण रूप से संस्कृति रही।

कला के मार्मिक ज्ञान के बिना साहित्यिक अध्ययन अपूर्ण और साहित्य के सूक्ष्म ज्ञान के बिना कला की समीक्षा संकुचित रह जाती है, क्योंकि कला व साहित्य का समान भाव से योजक रस तत्व एक ही है। कला की आँख से साहित्य और साहित्य की आँख से कला को देखना हमारे वर्तमान सांस्कृतिक युग की एक बड़ी आवश्यकता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1– अग्रवाल, वी0एस0, इण्डियन आर्ट, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी–1964, पेज नं0–218–225

2– उपाध्याय, डॉ0 उदयनारायण एवं गौतम तिवारी, भारतीय स्थापत्य एवं कला, मोतीलाल बनारसी दास, 2001, अध्याय–1

3– बाशम, ए.एल0 (सं0), ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, आक्सफोर्ड–1875, पेज नं0–197–211

4– वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ–1972, पेज नं0–112

5– डॉ0 परमेश्वरी लाल, भारतीय वास्तुकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–2019, पेज नं0–59

6– भारती, डॉ0 मिनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्ति शिल्प एवं स्थापत्य कला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी–2022, पेज नं0–100–115

7– झा, रंग कुमार, भारतीय स्थापत्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – 2010, पेज नं0–21–30

8– Abridged from the Vishnu Purana, Translated by Wilson ASI 1968

9- Ahuja, N. (2018) Art and archaeology of Ancient India; From the earliest time to the sixth century, Ashmolean Museum, ISBN-13 ; 978 – 1910807170

10- Mookerji, R, (2017) The Gupta Empire (4th ed) Motilal Banarsidas; 13-978-8120804401, Page No. 131-183

11- Gupta, S.P. (2004) Element of Indian Art: Including temple architecture, iconography and ovonomerty, D.K. Print World Ltd. ISBN – 13:978 – 8124602140, Page No. 14, 83